भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकलपनाएं

सम्पादक : डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978 - 81 - 993854 - 7 - 4

मूल्य - 300/-

रचना -
भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक -
डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

आवरण -
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक -
श्री श्याम ऑफसेट, किशनगढ़

संस्कृति और व्यक्ति

पिंकी सांखला
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं और जैविक क्रियाओं तक सीमित नहीं है। वह एक सामाजिक प्राणी है, जो अपने परिवेश और सांस्कृतिक परंपराओं से गहन रूप से प्रभावित होता है। मानव जीवन का हर पहलू—उसकी सोच, मूल्य, आचार-व्यवहार, नैतिकता और दृष्टिकोण—संस्कृति के प्रभाव में ढलता है। व्यक्ति और संस्कृति का संबंध द्विपक्षीय है। व्यक्ति संस्कृति का उत्पाद है, और संस्कृति व्यक्ति के निर्माण और विकास में निर्णायक भूमिका निभाती है। यह संबंध केवल सामाजिक नहीं है, बल्कि मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक स्तर पर भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति जन्म लेते ही अपने परिवेश की सामाजिक, धार्मिक और नैतिक मान्यताओं के प्रभाव में आता है। माता-पिता, परिवार, समाज और शिक्षा संस्था उसे वह आधार प्रदान करते हैं, जिस पर वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। संस्कृति उसे जीवन की दिशा और उद्देश्य प्रदान करती है। इसके विपरीत, व्यक्ति संस्कृति का पालन करने के साथ-साथ उसे सुधार और नवाचार के माध्यम से विकसित भी करता है। यही कारण है कि व्यक्ति और संस्कृति का अध्ययन समाज के अध्ययन का अनिवार्य अंग है।

आधुनिक युग में, जब वैश्वीकरण, तकनीकी और डिजिटल क्रांति ने हमारे जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, तब यह समझना आवश्यक हो गया है कि कैसे व्यक्ति और संस्कृति का संतुलन स्थापित किया जा सकता है। व्यक्ति को आधुनिकता में जीवन जीते हुए अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखनी होती है। यह न केवल सामाजिक स्थिरता बल्कि व्यक्तिगत विकास के लिए भी अनिवार्य है।

संस्कृति का अर्थ और स्वरूप

संस्कृति केवल परंपराओं, रीति-रिवाजों या सामाजिक नियमों का समूह न होकर मानव जीवन का समग्र, व्यवस्थित और अभिन्न हिस्सा है। संस्कृति में सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, बौद्धिक और कलात्मक सभी तत्व समाहित होते हैं। भाषा, धर्म, कला, संगीत, साहित्य, रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार, ये सभी संस्कृति के

अविभाज्य अंग हैं।

भाषा संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। यह केवल संवाद का साधन नहीं है, बल्कि ज्ञान, अनुभव और परंपराओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित करने का मूल साधन भी है। संस्कृत और हिंदी जैसी भाषाओं ने भारतीय समाज में दर्शन, धर्म और साहित्य को संरक्षित किया। ये भाषाएँ व्यक्ति के बौद्धिक विकास और सामाजिक समझ का आधार भी बनीं।

धार्मिक और नैतिक मूल्य व्यक्ति के जीवन में नैतिकता, विवेक और जीवन दृष्टि का निर्माण करते हैं। उदाहरण स्वरूप, महात्मा गांधी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का परिष्कृत रूप थे। व्यक्ति की नैतिक सोच, निर्णय क्षमता और जीवन शैली इन मूल्यों से प्रभावित होती है।

कला, संगीत और साहित्य व्यक्ति के भावनात्मक और बौद्धिक विकास में सहायक होते हैं। रामायण, महाभारत और शास्त्रीय संगीत तथा नृत्य न केवल सौंदर्य की अनुभूति कराते हैं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक मूल्यों की समझ भी प्रदान करते हैं। संस्कार और रीति-रिवाज जीवन के विभिन्न चरणों में नैतिक और सामाजिक शिक्षा प्रदान करते हैं। जन्म, उपनयन, विवाह, व्रत और अनुष्ठान व्यक्ति को जीवन के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभव कराते हैं।

भारतीय संस्कृति में सामूहिकता, आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्य प्रमुख हैं, जबकि पश्चिमी संस्कृति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, तर्कशक्ति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व दिया गया। यह तुलनात्मक अंतर यह दर्शाता है कि व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक पहचान के माध्यम से अपने व्यक्तित्व और जीवन दृष्टि का निर्माण करता है।

व्यक्ति पर संस्कृति का प्रभाव

संस्कृति व्यक्ति के जीवन में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाती है। यह उसके मानसिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को दिशा प्रदान करती है। व्यक्ति जन्मते ही अपने परिवेश की सामाजिक मान्यताओं और नियमों के प्रभाव में आता है। विद्यालय में अनुशासन, परिवार में संस्कारी आदतें और समाज की अपेक्षाएँ व्यक्ति के जीवन दृष्टिकोण को आकार देती हैं।

संस्कृति व्यक्ति की सोच, तर्कशक्ति और निर्णय क्षमता को विकसित करती है। भारतीय दर्शन, जैसे सांख्य, न्याय और वेदांत, व्यक्ति के बौद्धिक विकास और विवेकशक्ति को अधिकाधिक सुदृढ़ बनाते हैं। व्यक्ति के नैतिक मूल्य, जैसे सत्य, दया, अहिंसा और सहिष्णुता, भी संस्कृति के प्रभाव का परिणाम होते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व और सामाजिक पहचान संस्कृति के माध्यम से आकार लेती है। त्योहार,

धामिज़्क संस्कार और सामाजिक प्रथाएँ न केवल व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान स्थापित करती हैं, बल्कि उसे समाज का सक्रिय और जिम्मेदार सदस्य बनाती हैं।

संस्कृति के प्रभाव से व्यक्ति अपनी आत्म-जागरूकता, सामाजिक चेतना और बौद्धिक क्षमता का विकास करता है। यह प्रभाव केवल प्रारंभिक जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक चरण में सांस्कृतिक मूल्य और परंपराओं से प्रभावित रहता है।

व्यक्ति का संस्कृति पर प्रभाव

व्यक्ति केवल संस्कृति का पालन करने वाला नहीं है, बल्कि उसे संवर्धित और परिवर्तन करने वाला भी है। व्यक्ति के नवाचारी दृष्टिकोण, सामाजिक सुधारक व्यक्तित्व और सृजनात्मक योगदान संस्कृति को समयानुसार विकसित और प्रगतिशील बनाते हैं।

स्वामी दयानन्द ने भारतीय समाज में धार्मिक सुधार और आधुनिक शिक्षा की स्थापना के माध्यम से संस्कृति को नई दिशा दी। रविंद्रनाथ टैगोर ने साहित्य, संगीत और शिक्षा के माध्यम से भारतीय संस्कृति को वैश्विक पहचान प्रदान की। महिला शिक्षा, डिजिटल तकनीक और विज्ञान ने पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक आदर्शों में परिवर्तन लाया। यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति संस्कृति का पालन करने के साथ-साथ उसे सृजनात्मक और संवर्धनकारी रूप में बदलता है। व्यक्ति के प्रयासों से संस्कृति अपने समय और परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होती है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, जिससे समाज और व्यक्ति दोनों का विकास सुनिश्चित होता है।

व्यक्ति और संस्कृति का संघर्ष

व्यक्ति और संस्कृति का संबंध हमेशा सामंजस्यपूर्ण नहीं होता। जीवन के विभिन्न समय और परिस्थितियों में व्यक्ति की निजी इच्छाएँ, सोच और दृष्टिकोण सांस्कृतिक मूल्यों से टकरा सकते हैं। यह संघर्ष केवल बाहरी सामाजिक दबाव तक सीमित नहीं होता, बल्कि व्यक्ति की मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्थिरता को भी प्रभावित करता है।

जब व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज की अपेक्षाएँ एक-दूसरे के विपरीत होती हैं, तो संघर्ष स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है। उदाहरण स्वरूप, किसी युवा के करियर, शिक्षा या विवाह संबंधी निर्णय पारंपरिक परिवारिक और सामाजिक अपेक्षाओं के साथ मेल नहीं खाते। इस स्थिति में व्यक्ति को स्वयं की इच्छाओं और सांस्कृतिक मानकों के बीच संतुलन स्थापित करना होता है।

संघर्ष के समय व्यक्ति की सोच, धैर्य और समझ की परीक्षा होती है। यदि

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास और आत्म-जागरूकता के मार्ग पर चलता है, तो यह संघर्ष उसे मानसिक और नैतिक दृष्टि से मजबूत बनाता है। संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज और संस्कृति में भी आवश्यक परिवर्तन और नवाचार उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति और संस्कृति के बीच संघर्ष न केवल अवांछनीय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास का भी माध्यम बन सकता है।

व्यक्ति और संस्कृति का सामंजस्य

संस्कृति और व्यक्ति के बीच सामंजस्य सामाजिक और व्यक्तिगत विकास का आधार है। व्यक्ति के मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए आवश्यक है कि वह अपने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के साथ संतुलन बनाए। सामंजस्य का अर्थ केवल सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करना नहीं है, बल्कि उसे समयानुकूल रूप में अपनाना और नवाचारों के माध्यम से संवर्धित करना भी है। संवाद और समझ इस सामंजस्य की पहली शर्त हैं। व्यक्ति को यह जानना आवश्यक है कि सांस्कृतिक मूल्यों का वास्तविक अर्थ क्या है और उनका पालन किस प्रकार जीवन में संतुलन स्थापित करता है। उदाहरण स्वरूप, धार्मिक अनुष्ठानों का आध्यात्मिक महत्व समझकर उनका पालन करना व्यक्ति के मानसिक और नैतिक विकास में सहायक होता है।

सृजनात्मक सह-अस्तित्व भी सामंजस्य का महत्वपूर्ण तत्व है। यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सोच के साथ संस्कृति के मूल्यों को प्रभावित और संवर्धित कर सके। लोक कला, संगीत और साहित्य में नवीन प्रयोग इस सृजनात्मक सह-अस्तित्व का स्पष्ट उदाहरण हैं। व्यक्ति और संस्कृति का सामंजस्य समाज की स्थिरता और विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारत में संस्कृति और व्यक्ति का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में व्यक्ति और संस्कृति का संबंध अत्यंत प्राचीन और सजीव रहा है। वैदिक काल में संस्कृति में धर्म, ज्ञान और सामाजिक दायित्व के मूल्य प्रमुख थे। उस समय व्यक्ति का शिक्षा और संस्कार जीवन के हर पहलू में महत्वपूर्ण थे।

मध्यकाल में संत और सुधारक व्यक्ति ने संस्कृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तुलसीदास, कबीर, मीराबाई जैसे संतों ने समाज के नैतिक और धार्मिक मूल्यों में सुधार किया। उन्होंने केवल भक्ति और आध्यात्मिक मार्ग का प्रचार नहीं किया, अपितु सामाजिक समानता और मानवाधिकार के लिए भी संघर्ष किया।

आधुनिक काल में महापुरुषों ने भारतीय संस्कृति को नई दिशा दी। महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक सुधार किए। स्वामी दयानन्द ने शिक्षा और धार्मिक सुधार के माध्यम से समाज को जागरूक किया। रविंद्रनाथ टैगोर ने साहित्य, संगीत और शिक्षा के माध्यम से भारतीय संस्कृति को

वैश्विक पहचान दिलाई। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति संस्कृति को संवर्धित करने और उसे समयानुसार बदलने में निर्णायक भूमिका निभाता है।

वैश्विक दृष्टिकोण से व्यक्ति और संस्कृति

व्यक्ति और संस्कृति के संबंध को केवल भारतीय समाज तक सीमित नहीं किया जा सकता। वैश्विक दृष्टि से देखा जाए तो पूर्वी और पश्चिमी समाजों में व्यक्ति और संस्कृति का संबंध भिन्न रूप में विकसित हुआ है। पश्चिमी समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लोकतंत्र और तर्कशक्ति को अधिक महत्व दिया गया। यूरोपीय समाज में विज्ञान, शिक्षा और स्वतंत्र विचार को बढ़ावा मिला। व्यक्ति ने स्वतंत्र रूप से संस्कृति का पालन और परिवर्तन किया।

पूर्वी समाज में सामूहिकता, आध्यात्मिकता और परंपराओं का महत्व अधिक रहा। जापान और भारत में परिवारिक मूल्यों, सामाजिक दायित्व और सामूहिक चेतना को प्राथमिकता दी गई। इस दृष्टि से देखा जाए तो व्यक्ति संस्कृति को दोनों दृष्टियों से प्रभावित करता है। पश्चिमी दृष्टिकोण नवाचार और व्यक्तिगत अधिकारों को बढ़ावा देता है, जबकि पूर्वी दृष्टिकोण सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिक मूल्य पर बल देता है।

आधुनिक युग में व्यक्ति और संस्कृति

आज के तकनीकी और डिजिटल युग में व्यक्ति और संस्कृति का संबंध नई चुनौतियों के साथ विकसित हो रहा है। डिजिटल तकनीक, सोशल मीडिया और वैश्वीकरण ने व्यक्ति के व्यवहार, सोच और सामाजिक आदतों में परिवर्तन लाया है। युवा पीढ़ी की भाषा, पहनावा और सामाजिक आदतें आधुनिक संस्कृति के प्रभाव को दर्शाती हैं।

व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखते हुए आधुनिक चुनौतियों का सामना करे। पारंपरिक त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक मूल्यों का आधुनिक संदर्भ में पालन व्यक्ति और संस्कृति के सामंजस्य का उदाहरण है। तकनीकी विकास और वैश्वीकरण के बावजूद सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण आधुनिक समाज की स्थिरता और व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संस्कृति और व्यक्ति का संबंध द्विपक्षीय, सृजनात्मक और विकासशील है। संस्कृति व्यक्ति को दिशा, आदर्श और मूल्य प्रदान करती है, जबकि व्यक्ति संस्कृति को संवर्धन और परिवर्तन का अवसर देता है।

व्यक्ति और संस्कृति के बीच संतुलन, संवाद और समझ के बिना समाज और व्यक्तिगत विकास संभव नहीं है। शिक्षा में संस्कृति और आधुनिकता का संतुलन, नवाचार के लिए स्वतंत्र सोच, और सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण आधुनिक समाज

के लिए अनिवार्य हैं। व्यक्ति और संस्कृति का यह सृजनात्मक सह-अस्तित्व समाज की स्थिरता, प्रगति और व्यक्ति के नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का आधार है।

श्री अरविन्द का विचार है कि मानव जीवन की सारी समस्याएँ केवल बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न नहीं होतीं, बल्कि वे मनुष्य के अस्तित्व की जटिलता से जुड़ी होती हैं। मनुष्य केवल भौतिक सत्ता नहीं है; वह एक साथ शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक सत्ता भी है। यही कारण है कि उसके जीवन की दिशाएँ और उसकी क्रियाएँ बहुआयामी होती हैं। मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ बहुत गुप्त और अप्रकट रहती हैं। ये शक्तियाँ उसके जीवन की संरचना और विकास की दिशा निर्धारित करती हैं। यही शक्तियाँ संस्कृति को जन्म देती हैं और संस्कृति व्यक्ति के जीवन को आकार देती है। इस प्रकार मनुष्य और संस्कृति का संबंध परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का है।

श्री अरविन्द के अनुसार, यदि हम व्यक्ति की प्रकृति को समझना चाहते हैं, तो हमें केवल शरीरशास्त्र या जीवनशास्त्र की सहायता नहीं लेनी चाहिए। हमें मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्म और योग सभी का सहारा लेना होगा। क्योंकि व्यक्ति केवल शरीर या मन ही नहीं है, बल्कि वह एक गत्यात्मक समग्र है, जिसकी गहराई केवल दाशज़्निक दृष्टि से ही समझी जा सकती है।

यही कारण है कि मानव प्रकृति विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न रूप में प्रकट होती है। जिस सांस्कृतिक परिवेश में व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, वहीं से वह जीवन के अनुभव ग्रहण करता है। ये अनुभव उसकी गति और दिशा का निधाज़्रण करते हैं। परंपराएँ, संस्कार और सांस्कृतिक धारा मिलकर उसकी मानसिक संरचना को आकार देती हैं।

इस दृष्टि से संस्कृति केवल व्यक्ति पर थोपी हुई सत्ता नहीं है, बल्कि वह उसकी मानसिक और आध्यात्मिक विकास की पृष्ठभूमि है। संस्कृति ही वह आधारभूमि है, जिस पर व्यक्ति अपनी चेतना का निर्माण करता है। इसी प्रक्रिया में व्यक्ति केवल संस्कृति का अंग ही नहीं बनता, बल्कि उसका वाहक भी हो जाता है, अर्थात् वह संस्कृति को आगे ले जाने वाला माध्यम भी होता है।

स्पेंगलर का मत है कि यांत्रिक प्रौद्योगिकी का इतिहास बहुत तीव्र गति से अपने स्वाभाविक और अनिवार्य अंत की ओर अग्रसर है। उनका मानना था कि प्रत्येक संस्कृति का एक जीवन-चक्र होता है—जन्म, विकास, उत्कर्ष और पतन। जिस प्रकार अन्य महान संस्कृतियाँ समय के साथ खाली हो गईं, उसी प्रकार आधुनिक तकनीकी संस्कृति भी एक दिन समाप्त हो जाएगी। यद्यपि इसका सटीक समय और

रूप निश्चित नहीं किया जा सकता, फिर भी स्पेंगलर ने संस्कृति और मानव के सामने उपस्थित संकट की ओर स्पष्ट संकेत किया।

यह संकट केवल तकनीकी क्षेत्र का नहीं है, बल्कि यह मानव और संस्कृति दोनों के अस्तित्व से जुड़ा हुआ संकट है। जिस गति और दिशा में आज की संस्कृति बढ़ रही है—अत्यधिक भौतिकता, उपभोक्तावाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास और मानसिक शून्यता—उसमें स्पेंगलर की शंका निराधार नहीं कही जा सकती।

किन्तु अन्य चिंतकों का दृष्टिकोण अधिक आशावादी है। उनका मानना है कि यह संकट केवल विनाश का संकेत नहीं है, बल्कि एक नवीन समाज और नई संस्कृति के उदय का भी पूर्वाभास हो सकता है।

श्री अरविन्द ने वर्तमान युग की क्रांति को मानव विकास में एक क्रांतिकारी स्थिति माना। उनके अनुसार, यह युग मानवता को एक उच्चतर आध्यात्मिक स्तर की ओर ले जाने वाला है।

आल्बर्ट श्वाइटजर ने भी इसे महान सांस्कृतिक क्रांति का चिह्न बताया। उनके विचार में, आज की अस्थिरता और संकट वास्तव में एक नई मानव संस्कृति के जन्म के प्रसव-वेदना के समान हैं।

इन विचारों से यह तथ्य सामने आता है कि संस्कृति केवल बाहरी संस्था नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। मानव और संस्कृति परस्पर आश्रित हैं। जब संस्कृति संकट में पड़ती है तो मानव जीवन भी प्रभावित होता है, और जब मानव की चेतना परिवतिज्त होती है, तो संस्कृति का स्वरूप भी बदल जाता है।

इस प्रकार, स्पेंगलर का निराशावादी दृष्टिकोण और श्री अरविन्द व श्वाइटजर का आशावादी दृष्टिकोण मिलकर हमें यह बताते हैं कि संस्कृति एक सतत परिवर्तनशील प्रवाह है। उसका अंत केवल पुराने रूप का अंत होता है, जबकि उसकी नई संरचना और नए रूप में वह मानव जीवन को दिशा देती है।

संस्कृति के इतिहास का अवलोकन करने पर यह तथ्य निर्विवाद रूप से सामने आता है कि प्रत्येक संस्कृति व्यक्ति पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है। मनुष्य का व्यक्तित्व केवल उसकी जैविक संरचना या भौतिक अस्तित्व से निर्मित नहीं होता, बल्कि यह संस्कृति के सतत् प्रभाव से आकार ग्रहण करता है। व्यक्ति का शारीरिक एवं स्नायुविक ढाँचा, उसकी संवेदनाएँ और अनुभव तो उसका आधार हैं, किन्तु उसका वास्तविक व्यक्तित्व संस्कृति के आलोक में ही परिपक्व होता है। इस दृष्टि से व्यक्ति अपनी संस्कृति का एक प्रतिरूप होता है।

फिर भी, प्रत्येक मनुष्य में एक ऐसी निजता अवश्य होती है, जिसे संस्कृति पूरी

तरह आप्लावित नहीं कर सकती। यही निजता व्यक्ति को अनन्य और विशिष्ट बनाती है। अन्यथा मनुष्य केवल संस्कृति का उत्पाद बनकर रह जाता। यह निजता ही उसे नई दिशा सोचने, सृजन करने और कभी-कभी संस्कृति को चुनौती देकर उसे परिवर्तित करने की क्षमता प्रदान करती है।

संस्कृति की विशेषताएँ मूलतः व्यक्ति की बुद्धि और स्वभाव की विशेषताओं के रूप में प्रकट होती हैं। बुद्धि, विवेक, सौंदर्य-बोध, नैतिकता, आध्यात्मिकता—ये सभी गुण किसी न किसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पल्लवित-पुष्पित होते हैं। इन विशेषताओं का जीवन-मूल्यों से गहरा संबंध होता है। जीवन-मूल्य कभी स्वयं अपने आप में महत्वपूर्ण होते हैं और कभी अन्य मूल्यों के उत्पादन का साधन बनते हैं। उदाहरणार्थ, सत्य, अहिंसा और करुणा अपने आप में भी जीवन-मूल्य हैं, और वे समाज में न्याय, समता और सहिष्णुता जैसे उच्चतर मूल्यों के उत्पादन का साधन भी बनते हैं।

जब व्यक्ति इन विशेषताओं को आत्मसात कर लेता है, तो वह केवल संस्कृति का अंग नहीं रह जाता, बल्कि उसका वाहक बन जाता है। वह संस्कृति को आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाता है और समयानुसार उसमें नवीनता भी जोड़ता है।

संस्कृति के मूल तत्व—काल, दर्शन, सौन्दर्य-बोध, रस, स्थापत्य, चित्रकला, मूर्तिकला—ये सभी तभी जीवित और सार्थक हैं, जब व्यक्ति की उपस्थिति हो। व्यक्ति के अभाव में इनका कोई अस्तित्व या महत्व नहीं रह सकता। यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का सम्पूर्ण व्यापार व्यक्ति के बिना गतिमान नहीं हो सकता। चाहे वह नैतिकता हो, परंपरा हो या कला का कोई भी रूप, उसके लिए व्यक्ति का होना अनिवायज़ है। यही कारण है कि सांस्कृतिक संस्थान भी तभी गतिशील रह सकते हैं जब उनमें सक्रिय व्यक्ति सम्मिलित हों।

व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है और प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। अतः संस्कृति के क्षेत्र से व्यक्ति को अलग कर देख पाना किसी भी प्रकार संभव नहीं है। व्यक्ति और संस्कृति के संबंध को काटकर नहीं समझा जा सकता; वे दोनों परस्पर संबद्ध और परस्पर निर्भर हैं।

समाजशास्त्री पिटिरिम सोरोकिन का मत भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि किसी एक व्यक्ति के लिए पूर्ण संस्कृति कभी भी अनिवार्य रूप से गठित नहीं होती। व्यक्ति हमेशा विभिन्न सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व के बीच रहता है। उसका व्यक्तित्व एकल संस्कृति से नहीं, बल्कि अनेक सांस्कृतिक प्रभावों के मिश्रण से निर्मित होता है। यही कारण है कि कोई भी संस्कृति पूर्णतया स्वायत्त और एकाकी नहीं होती; वह हमेशा विभिन्न परंपराओं, मूल्यों और व्यवस्थाओं के सम्मिश्रण से बनी होती है।

❑❑❑